ISSN: 2278-6236
Impact Factor: 7.065

Anchal ki Arthvyavastha Mein Jakda Kisan : Badalthe Samay Mein Shoshan Ki Nai Paratein

अंचल की अर्थव्यवस्था में जकड़ा किसान : बदलते समय में शोषण की नई परतें

Dr.Anita p.l

डॉ. अनिता. पी. एल

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग

महाराजा कॉलेज

एरणाकुलम

सारांश :

यह आलेख ग्रामीण भारत के किसानों की आर्थिक स्थितियों, शोषण की बदलती प्रवृत्तियों और सरकारी योजनाओं की विफलताओं पर प्रकाश डालता है। लेख में समकालीन अंचलिक उपन्यासों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि कैसे ज़मींदारी प्रथा समाप्त होने के बावजूद शोषण के रूप बदलते रहे हैं। किसानों की आत्महत्याएँ, कर्ज में डूबे परिवार, विस्थापन की पीड़ा और सरकारी योजनाओं का खोखलापन इस लेख की मूल संवेदना है। उपन्यासों के पात्रों और गांवों के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारत का किसान आज भी आर्थिक गुलामी में जकड़ा हुआ है।

मूल शब्द :

आर्थिक शोषण – ग्रामीण अंचल – ज़मींदारी – भूमिहीन किसान – पंचवर्षीय योजना – गरीबी – साहूकार – सरकारी योजनाएँ – विस्थापन – विकास – आत्महत्या – ऋणग्रस्तता – बांध योजना – क्रैशर उद्योग – शोषण की नई शक्लें – अंचलिक उपन्यास – मजदूर वर्ग – सरकारी विफलता – आधुनिक किसान – विभाजन पूर्व भारत ।

भूमिका :

भारत की अर्थव्यवस्था का मूल आधार गांव और वहां का किसान है, परंतु आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी भारतीय ग्राम्य जीवन आर्थिक विषमता, शोषण और असमानता के अंधकार में डूबा हुआ है। विशेष रूप से अंचलिक साहित्य ने गांव की यथार्थ परिस्थितियों को उजागर करते हुए, वहां के किसानों और श्रमिक वर्ग के जीवन संघर्ष को प्रमुखता दी है। इन उपन्यासों में आर्थिक शोषण को केवल एक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना

का हिस्सा बताया गया है, जिसमें ज़मींदार, साहूकार और सत्ता से जुड़े लोग मुख्य भूमिका निभाते हैं। विकास योजनाओं की विफलता, सरकारी उदासीनता, और योजनाओं के नाम पर गरीब किसानों को विस्थापित कर लाभ उठाने वाली नीतियों की भी आलोचना इन रचनाओं में मिलती है। भूमिहीन किसान, कर्ज़ में डूबे मजदूर और अपने ही खेतों से बेदखल होते ग्रामीणों की व्यथा को इन उपन्यासों ने मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इस लेख में समकालीन अंचलिक उपन्यासों के सन्दर्भ से ग्रामीण अंचलों में व्याप्त आर्थिक शोषण और विकास के नाम पर हो रहे अत्याचारों की पड़ताल की गई है, जिससे भारतीय लोकतंत्र की जमीनी सच्चाइयाँ सामने आती हैं।

भारत का ग्रामीण अंचल आर्थिक रूप से सबसे अधिक पिछड़ा माना जाता है। किसानों की कृषि नीति ने कृषकों को ज़मीन्दारों का दास बना दिया। ग्रामांचल हमेशा शोषक वर्ग के अभिशाप से ग्रस्त रहे । शोषक वर्ग के अत्याचारों से पीड़ित शोषित जनता जिस त्रासदी को अधिक झेला वह आर्थिक शोषण था । उच्च वर्ग जिस ढंग से किसानों मज़दूरों का शोषण करते थे उससे किसानों की आर्थिक स्थिति दिन ब दिन बदतर हो रही थी। समकालीन आंचलिक उपन्यासकारों ने जिन गांवों और क्षेत्रों को अपने उपन्यास का विषय बनाया है उससे यह बात ज्ञात होती है कि भारत के गांवों की स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास साल बाद भी जैसी की तैसी है। आज भी गांव में ऊँचे वर्ग भूमिहीन अवर्ण और पिछड़ी जातियों का शोषण करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने गांवों की गरीबी को दूर करने केलिए अनेक आर्थिक योजनाएँ बनायी जैसी पंचवर्षीय योजना, ज़मीदारी उन्मूलन, जोतने बोतने वालों को भू-स्वामित्व, चकबन्दी, सहकारी योजनाओं की स्थापना, चरखा सेंटर, बांध योजना आदि । लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात इतने सालों के बाद भी भारत के अस्सी प्रतिशत गांवों की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक विषमता ही है। व्यक्ति चारों ओर आर्थिक दबावों, अनुभवों एवं विविध संगति - विसंगतियों के बीच पिस रहा है आर्थिक विषमता से जूझनेवाले गांवों में एक है करइल । 'सोनामाटी' में प्रधान रूप से दो वर्ग हैं। उच्च वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं करइल के हनुमान प्रसाद करइल, महुआरी के बाबू दीनदयाल, चटाई टोला के नवीन बाबू आदि ये सब भूमिपति हैं, जिनका पूरे गांव पर आतंक है। दूसरे वर्ग निम्न वर्ग में रामरूप और सीरी भाई के साथ साथ छोटे किसान और भूमिहीन मज़दूर शामिल हैं, जो ज़मीन्दारी शोषण का शिकार बनते हैं। गांव की नारकीयता का मुख्य कारण आर्थिक शोषण है। भूमिपतियों के शोषण के कारण सामान्य किसान कड़ी

मेहनत के बावजूद अभाव, गरीबी और ऋण ग्रस्तता में छटपटा रहे हैं। इसके पीछे अंचल के ज़मीन्दारों की अर्थलिप्सा, स्वरता, कुटिलता और शेषक वृत्ति हैं। वे अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए साम – दाम, जंमीन हड़पना, गरीबों के खेतों से अनाज लूटना, गाली गलौच एवं मारपीट करना आदि रूपों में शोषण करते हैं ।

ज़मीन्दारी टूट जाने पर भी उसके नख दांत कहीं टूटे नहीं हैं अब वे छिपा रखते हैं। पढ़े लिखे शिक्षितं लोग गांव की अपने खेती सब कुछ बेचकर शहर में एक घर बनाकर वहाँ जीवित रहना पसन्द करते हैं । खेती से कोई लाभ न होने के कारण विराज अपनी हिस्सा बेचना चाहता है। गांव की गरीबी को दूर करने केलिए सरकर भिन्न भिन्न योजनाएँ बनाती हैं, पशुधन विकास केलिए होलस्ट्रीन, फ्रिजियन और जर्सी साँड़ लाते हैं। हमारी सरकार भूखे लोगों की भूख मिटाने के लिए साँड़ देती है। लेकिन इस विदेशी साँड़ को पालने के लिए अपनी भूख मिटाने से ज्यादा पैसा खर्च करना पड़ता है। महाराष्ट्रा के नासिक, विदरभा, मध्यप्रदेश के शियोपुर, ओडिसा के कालहण्डी जैसे गांव किसानों की आत्माहूति के लिए प्रसिद्ध है। उत्तरभारत में होनेवाला गणेशोत्सव इसबार विदरभा में नहीं हुआ। विदरभा में ही नहीं सौ से ज्यादा गांवों में इस साल कोई त्योहार नहीं मनाया। क्यों कि हर एक आठ घंटे में एक एक किसान अपनी आर्थिक विषमता से मर रहा है और वह सरकार से दयावध, के लिए प्रार्थना करते हैं । भूख से मरने वाले बच्चों को देखकर सरकार का कहना है कि वे लोग संस्कार शून्य हैं और बच्चों की संख्या ज्यादा होने के कारण एक दो मरने पर भी कोई बात नहीं है। इन किसानों को आर्थिक सहायता करने के लिए सरकार ने किसानों को पशुधन का पाकेज दिया। लेकिन उस साँड़ को पालने के लिए दिन में साठ रूपये की आवश्यकता है। अगर उनके पास साठ रूपये हो तो वह दो दिन खुशी से रहेगा। ओडीसा के कालहण्डी के लोगों ने फ़ूस गाय को न देकर अपनी भूख मिटायी और इसके फलस्वरूप बहुत किसान लोग मारे गये किसान की आर्थिक विषमता दूर करनेवाले इसीप्रकार की योजनाएँ भारत के हर एक गांव में चलती रहती है इसके पीछे विदेशियों का हाथ है, लेकिन गरीब किसान ही हमेशा शिकार होता. है। गांव की आर्थिक विषमता को सुराज से भी ज्यादा जानकीनाथ को मालूम है क्यों कि वह एक श्रमजीवि किसान है। भोगनेवाला ही उसका सुख दुःख बता सकता है । सारा देश घोर विडम्बनाओं के दुश्चक्र में फंस गया है ।

'डूब' में अनेक शेषक है, उसमें एक है मोतीसाव। उसने किसानों की दुर्बलता को जानकर साहूकारी बढ़ाने की योजना की। किसानों के लिए यह तो खुशी की बात थी क्यों कि खलिहान से वे अपनी पूरी फसल अपने घर ले जा सकते थे, और मोतीसाव ने किसानों को इतनी रकम कर्ज़ में दिया ताकी वे पुराने साहुकार का हिसाब साफ कर सके। घर ले जाकर किसान पूरे अनाज को साफ करते हैं, उसे मालूम है कि अनाज का ज़्यादातर साहूकार ले जाएगा, परंपरा से हटकर मोती साव व्याज देकर व्याज की अवधी ज़्यादा देते है। यह शोषण का विकसित या बदला रूप है। सरकार बाँध के काम तेज़ी से करने के लिए बहुत दूर से मज़दूर लाने की कोशिश में है। स्थानीय आदमी तीज त्योहार, शादी ब्याह त्याग नहीं सकते इसलिए सरकार स्थनीय लोगों को काम कर नहीं रखते हैं। बहुत दूर से मजदूरों को इसलिए लाते है कि वे सरलता से अपने घर न लौट सके। देश में आपात काल चलने के कारण सरकार ने दो हज़ार मदों को नसबंदी करवाने के लिए आदेश दिया, इसलिए हीरासाव गांव आकर मुआवज़े के धोखा देकर उन लोगों का नसबंदी करवाया। बाँध बनाने की योजना से लाभ उठानेवालों की संख्या गांव में बढ़ गयी है। कोई गांव गांव से आनेवाले अकाल के लिए अनाज इकट्ठा करता है तो कोई ज़मीन खरीदता है। सरकार ने जगह के बदले जगह न देकर दो हजार रूपया देकर कहीं जाकर रहने को कहा। वहाँ से गांववालों के शोषण की प्रक्रिया शुरू होने लगी। शासक वर्ग सत्ता में बने रहने के तौर तरीके ढूँढते रहते है। वे सार्वजनिक मंचों में जनता की उन्नति प्रगति तथा विकास की बातें करते हैं, लेकिन जनता के बजाय अपनी प्रगति एवं उन्नति के लिए कार्यन्वित रहते हैं । शासक वर्ग विकास के नाम पर इन बेचारों को लूटते हैं। एक प्रभातवेला में वे सुनते हैं कि गांव खाली कराना है, गांव में विकास आनेवाला है। लेकिन कई बरस बीतने के बाद भी न गांव के लिए कोई विकास कार्य की सुविधा है, न उन्हें शीघ्र विस्थापित कर कहीं बसाया गया है। सैकड़ों गांवों की ज़िन्दगी इसतरह स्थगित है, मानो वे जीते हुए भी निर्जीव हैं। ये किसान हल में जुते हुए बैल हैं जो दूसरों के लिए काम करते हैं। लेकिन इनकी मेहनत का फल इन्हें नहीं मिलता। फसल सेठ, साहूकार ले जाते हैं इन्हें ज़िन्दगी भर भूखे नंगे रहना पड़ता है। शासकों पर अंधश्रद्धा प्रकट करने वाले किसान को शासक दोनों हाथ से लूटते हैं। इस शोषण की कथा चलती रहती है। इसलिए 'पार' में वीरेन्द्र जैन ने इस बाँध के कारण पीड़ित राउतों की ज़िन्दगी का विस्तार से चित्रण किया है।

'तकसीम' में जीवणमल, गणपत और गुपालशाह जैसे साहूकारों के हाथ में था थोह मार्हम खाँ गांव। ये लोग सुविधा में रहने के लिए शहरों में जाकर रहते हैं लेकिन हाड़ी की फसल कटाई और अगाही के दिन गांव वापस आते हैं । इनका डर हैं कि इनकी अनुपस्थिति में हाली मुज़ेरे सारी फसल अपने घर में छिपायेगा। थोहा के अधिकतर भूमि हिन्दू सिक्ख साहूकारों के हाथों में थी । साहूकार किसी पूँजी लगाए बिना मालिक बना रहता था । शोंकार गांव में आटे में नमक के बराबर भी नहीं था लेकिन सारी आर्थिक शक्ति इनके हाथों में सिमटकर रह गई थी। जिसके पल्ले पर छह रूपए हैं वह साहूकारी कर सकता था। हिन्दू पाक विभाजन के पहले की बात ही लेखक ने चित्रित किया है। चप्पा चप्पा ज़मीन साहूकारों के चंगूल में थी। मुज़ेरे बस बटाई के अधार पर खेती करता था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह स्थिति नहीं बदलती थी।

'चाक' में रंजीत पहले अपने को किसान मानकर बड़ा गर्व करता था और उनका पूरा विश्वास था कि भारत में आधुनिक किसान का राज आएगा। शहर से रंजीत के जेट दलवीर के आने के बाद वह बदल गया। वह शहर जाकर व्यवसाय करना चाहता है, खेत बेचकर उस पैसे से प्लोट खरीदकर फिर नफे में बेचने का धंधा शुरू करना चाहता है । क्यों कि करोड़पति बनने की चाह उसके मन में है। वह गांव में इसलिए रहना नहीं चाहता कि गांव में लोग दूसरों को तहकीकातों से जुटे रहते हैं। जब उसने मछलि पालने का निश्चय किया तब लोगों ने उसे ऐसा देखा था जैसे उन्होंने कसाई खाना खोला हो । गांव में व्यापार का कोई माहौल नहीं था। गांव में वे ही लोग रहते हैं, जो कर्ज पाकर गहरी नींद सो सके । अतरपुर गांव भी साहूकारों के पंजों से मुक्त नहीं था।

'जिन्दगीनामा' में भी गांववालों का शोषण करनेवालों में मुख्य साहूकार ही है। ग्राम जीवन की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर रहती है। स्वतन्त्रता पूर्ति के पूर्व भारतीय किसानों का जीवन ऋण में डूबा हुआ था। आज का किसान अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखाई पड़ता है। लेकिन अब भी ऋण से किसानों की मुक्ति पूर्ण नहीं हुई है। 'इदन्नमम' में क्रैशरों की हदबन्दी में आये किसान लोगों की दुर्दशा और उनके रक्त चूसकर उससे लाभ उठानेवाले ठेकेदारों का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने किया है ।

निषकर्ष :

गांवों का चकाचौंधवाला बाह्य स्वरूप सच्चा नहीं है। उसके भीतर सिसकती मानवता का दयनीय स्वरूप अपनी आर्द पुकार से समाज की सच्चाई को उघाड़ने का प्रयत्न कर

रहा है। ईमान्दारी का भाषण मंचों पर देकर बेईमानी को अर्थ प्राप्ति का एकमात्र साधन मानना आज की सभ्यता की नंगी विभीषिका है। आर्थिक शोषण से मुक्त एक समाज का सपना भारत के हर एक इनसान के दिल में है । यदि कोई विकास लाना हो तो गांव से शुरू करना चाहिए और न कि शहरों के विकास के लिए गांव को शिकार बनना न पड़े। पिछड़े अंचलों का विकास जब होगा तब हमारा देश प्रगति के पथ पर होगा ।यह स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण अंचलों में आर्थिक शोषण केवल सामाजिक ढांचे की समस्या नहीं, बल्कि राजनीतिक और प्रशासनिक उदासीनता का परिणाम भी है। ज़मींदारी का अंत हुआ लेकिन शोषण का स्वरूप परिवर्तित हो गया–कभी साहूकारी में, कभी सरकारी योजनाओं में, और कभी विकास परियोजनाओं की आड़ में। यदि भारत को वास्तव में समावेशी विकास की ओर बढ़ाना है, तो गांवों की वास्तविक स्थिति को समझते हुए जमीनी स्तर पर प्रभावी और संवेदनशील योजनाओं की आवश्यकता है। जब तक गांव का किसान खुशहाल नहीं होगा, तब तक भारत की विकास गाथा अधूरी ही रहेगी।

संदर्भ

1 सोनामाटी – विवेकी राय
2 समरशेष है – विवेकी राय
3 डूब – वीरेन्द्र जैन
4 पार – वीरेन्द्र जैन
5 तकसीम – द्रोणवीर कोहली
6 चाक – मैत्रेयी पुष्पा
7 ज़िन्दगीनामा – कृष्णासोबती
8 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा